International Journal of Social Science and Humanities
www.humanitiesjournals.com
Online ISSN: 2664-8628 Print ISSN: 2664-861X
Received: 23-12-2024, Accepted: 22-01-2025, Published: 06-02-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 32-34

"रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के राष्ट्रवाद का तुलनात्मक अध्ययन"

विजय कुमार[1], आलोक कुमार[2]
[1] मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, आई.एस.डी.सी., इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
बीते कुछ वर्षों में भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रदर्शनात्मक राष्ट्रवाद का केंद्र के रूप में सामने आया है, टैगोर और गांधी दोनों लोगों के पास राष्ट्रवाद को लेकर अलग–अलग भविष्यवादी दृष्टिकोण थे, ऐसे में टैगोर व गांधी के राष्ट्रवाद पर व्यक्त किये गये विचारों को जानना महत्वपूर्ण हो जाता है, कि वे राष्ट्रवाद के बारे में क्या सोचते थे। और रवीन्द्रनाथ टैगोर का राष्ट्रवाद तथा महात्मा गांधी के राष्ट्रवाद से यह किस प्रकार से अलग है। इस विषय के अध्ययन पर हमारा प्रमुख प्रयास 'टैगोर' के राष्ट्रवाद को जानने का रहा है। हमें ऐसा लगा कि गांधी के राष्ट्रवाद से इसकी तुलना करके मैं अपना तर्क और स्पष्ट रूप से प्रकट कर सकूंगा। और टैगोर तथा गांधी के राष्ट्रवाद को जानने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में किया जायेगा।

मुलशब्द: वीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता, भारत.

टैगोर और गांधी के मध्य राष्ट्रवाद को लेकर दोनों के विचारों में अंतर दिखायी देता है, जहां टैगोर साम्राज्यवाद को राष्ट्रवाद की बाह्य अभिव्यक्ति मानते है, वहीँ गांधी ने राष्ट्रवाद का जो विचार दिया वो समाज के सभी स्तरों पर आत्मनिर्भरता पर आधारित था। दोनों के विचार भले ही अलग–अलग थे, किन्तु दोनों लोगों ने एक राष्ट्र के रूप में विविध और एकजुट होने का विचार दिया, और साथ ही हमें दमनकारी राष्ट्रवाद के बारे में चेतावनी भी दी। टैगोर प्रति राष्ट्रवादी थे ऐसी धारणा रही है। मेरा मानना है कि टैगोर राष्ट्रवादी थे, लेकिन उनके समकालीन राष्ट्रवादियों से उनका राष्ट्रवाद का रास्ता अलग था। उनके राष्ट्रवाद का रास्ता केवल राजनीति से न होकर नैतिकता व मानवता के उच्च आचरण और सामाजिक समस्याओं के समाधान व बौद्धिक स्वतंत्रता से होकर जाता है। जैसा कि उन्होंने कहा है, भारत में असली समस्या राजनीतिक नही बल्कि सामाजिक है। यह स्थिति हर देश की रही है। पश्चिम में राजनीति, पश्चिमी आदर्शो पर हावी रही है, और भारत में भी हम इसी का अनुकरण कर रहे है।[1]

टैगोर के राष्ट्रवादी विचार हमें मुख्य रूप से उनके साहित्य व उनके गांधी, जी.सी.एफ़. एंड्रयूज़ से पत्र वार्तालापों और प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान (1916–17 ई.) के वर्षों में जापान, अमेरिका की यात्रा में दिए गए वक्तव्यों में दिखते है। उनके द्वारा साम्राज्यवाद की आलोचना, उग्र राष्ट्रवाद, राजनीति आदि की आलोचना में हम उनके राष्ट्रवादी विचार स्पष्ट रूप से देखते है। ऐतिहासिक दृष्टि से टैगोर के राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में देखे तो असल में टैगोर का अपने लोगों और राष्ट्रवाद से सम्बन्ध एक पेचीदा समस्या खड़ा कर देता है। युद्ध के बाद की अवधि में यह आम धारणा थी कि टैगोर शाताब्दी के आरम्भिक वर्षो में स्वयं भी एक राष्ट्रवाद के उग्र दौर से गुजरे है। जिसमे बंगाल का स्वदेशी आंदोलन व बंग–भंग (1905) शामिल है। और अगले दशक में उन्होंने अपेच्छाकृत शांत विचारो को अपना लिया था। लेकिन घरे बायरे (1916) इसका द्योतक है, इस दौर में उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति द्वेद वृत्ति को अपना लिया था।[2]

'सब्यसाची भट्टाचार्या' भी इस बात का उल्लेख करती है, उनके अनुसार, यह सर्वविदित है कि 20वीं सदी के पहले दशक में स्वदेशी आंदोलन के दौरान टैगोर राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थक थे, लेकिन धीरे–धीरे ऐसे राष्ट्रवाद के आलोचक बनते गए जैसे ही उन्होंने जापान के राष्ट्रवाद के विकसित रूप को एक अकर्मक विस्तारवादी शक्ति के रूप में देखा और यूरोप के सहकार्यशील हस्तक्षेप को (1914–1918 ई.) के विश्वयापी संघर्ष और बंगाल में राष्ट्रवादी आतंकवाद को उभरते देखा।[3]

बंगाल में इस उभार के बारे में टैगोर ने 1934 ई. में रचित अपने उपन्यास *'चार अध्याय'* में इस प्रश्न को उन्होंने गंभीरता से उठाया जिसकी बंगाल में विपरीत प्रतिक्रिया हुई थी। जो लोग राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में थे उन्होंने टैगोर के अन्तर्राष्ट्रीय की आलोचना भी की थी।[4]

टैगोर भारत व यूरोप की सभ्यता की तुलना करते हैं। उनके अनुसार जब देश की भौगोलिक सीमाएँ व संचार की सुविधाएँ थोड़ी थी, जब लोगों के अपने अलग–थलग क्षेत्र में एकता की निजी धारण की पर्याप्त थी उन दिनों वे अपनो में एकता बनाए रखते व दूसरों से लड़ते परन्तु समय की यह नैतिक धारणा ही उन्हें महान बनाती थी। उन्होंने कला, विज्ञान और धर्म का विकास किया। राष्ट्र की धारणा के विकास के दौरान भाईचारे की संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में कैद थी, क्योंकि उस समय यही सीमाएँ वास्तविक थी।[5] टैगोर कहते हैं कि पश्चिमी देशों का इतिहास, सभ्यता व मानवता के आदर्शों के लिये खतरा रहा है। इसलिए टैगोर कहते हैं कि पश्चिमी सभ्यता से मुकाबला करने में भारत का भला नहीं है।[6] वे भारतीय राष्ट्रवादियों व लोगों से ऐसा आग्रह कर रहे हैं कि हमें अपनी नियति के अनुसार चलना चाहिए।

टैगोर पश्चिम द्वारा विज्ञान में प्रगति की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि पूर्व को इससे सीख लेनी चाहिए, लेकिन टैगोर की सहानूभूति व प्यार भौतिक व कृत्रिम अवरोधकों को स्वीकार नहीं करती है।[7] उनकी सहानूभूति सभी के लिए है। टैगोर का राजनीतिक जीवन हालांकि एक जीवनी लेखक का क्षेत्र है व उनका राजनीतिक विचार हर किसी के लिए विश्व शान्ति की संवृद्धि का रहा है।

एक भाविष्य वक्ता की भावना के साथ उन्होंने लिखा कि भारत के पास कभी भी राष्ट्रवाद का वास्तविक भाव नहीं रहा है। टैगोर के अनुसार मुझे बचपन से सिखाया गया है कि ईश्वर की पूज्य ईश्वर तथा मानवता कि भक्ति से बड़ी है। मैं इस तरह की शिक्षा से बाहर निकल आया हूँ। और मुझे पूरा यकीन है कि उस शिक्षा के विरूद्ध लड़कर लाभान्वित होंगे जो यह सिखाती है कि देश मानवता के आदर्शों से बड़ा है।[8] अतः टैगोर देश के दैवीयकरण करने के खिलाफ है। उन्हें लगता है कि इससे व्यक्ति स्वतंत्र रूप

से नहीं सोच सकता कि उसे क्या करना है, और अगर राष्ट्र गलत करता है तो इसकी आलोचना नहीं कर सकता, चूँकि वे देवता की आलोचना नहीं कर सकते।

टैगोर राष्ट्र के विरूद्ध भी नहीं है, बल्कि सभी राष्ट्रों के एक सामान्य विचार के विरूद्ध है। उनके अनुसार राष्ट्र तमाम लोगों की संगठित शक्ति का एक पक्ष है। यह संगठन ऐसा आग्र अविरल बनाए रखता है कि सारे लोग शक्तिशाली तथा कुशल बने। लेकिन शक्ति तथा कुशलता पाने का कठोर प्रयास मानव की उच्च प्रकृति की ऊर्जा को सोख लेता है, जहाँ वह आत्मत्यागी व रचनात्मक होता है। इससे मानव की त्याग करने की शक्ति अपने अन्तिम उद्देश्य से भटक जाती है। संगठन के रखरखाव में वह लग जाता है। पर वह इसी में नैतिक उन्नयन का संतोष पाने लगता है, और मानवता के लिए बहुत बड़ा खतरा बन जाता है।[9] इस प्रकार टैगोर राष्ट्र की धारणा को मानवीयता व नैतिकता के लिए खतरा कह रहे हैं, और साथ ही वे राष्ट्रवाद को एक बहुत बड़ा संकट मानते हैं और भारत की समस्याओं का इसे कारण मानते हैं।

टैगोर भारत की सामाजिक समस्याओं की तरफ इशारा करते हुए जातिप्रथा को एक प्रबल समस्या मानते हैं। उनके अनुसार, जातिप्रथा के नियमन के लिये भारतवर्ष ने विभिन्नता को स्वीकृति दी लेकिन परिवर्तनशीलता को नहीं, जो जीवन का नियम है।[10]

टैगोर समकालीन राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि– भारत में हमें जिस बात के लिये सोचना है वह उन सामाजिक रीति–रिवाजों तथा आदर्शों को हटाने होंगे, जिसके कारण आत्मसम्मान में कमी आयी है।[11] अतः टैगोर असली समस्या सामाजिक संगठन में मानते हैं। टैगोर एक अन्तर्राष्ट्रीयवादी दृष्टि रखते हैं, और वे राजनीतिक स्वतन्त्रता हमें स्वतंत्रता नहीं दिलाती ऐसा विचार रखते हैं।

अब हम अपने तर्क को और स्पष्ट करने के लिये राष्ट्रवाद के संदर्भ में टैगोर की महात्मा गाँधी से तुलना करना चाहूँगा।

गांधी के द्वारा राष्ट्रवाद पर दिए गये विचारों को जानने के लिए उनके द्वारा दिए गये वक्तव्यों पर दृष्टिपात करना होगा, जब हम गांधी के वक्तव्यों पर दृष्टिपात करते हैं तो पते है कि, उन्होंने व्यक्तिवाद, सगे–सम्बन्धी, क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयवाद के बीच विरोधाभाषी अवधारणाओं के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित किया, व्यक्ति को परिवार के लिए मरना पड़ता है, परिवार को गांव के लिए, गांव को जिले के लिए, जिले को प्रांत के लिए और प्रांत को देश के लिए मरना पड़ता है, इसी प्रकार यदि आवश्यक हो तो देश को भी मरना पड़ता है, विश्व के लाभ के लिए।[12]

इस प्रकार, गांधी के यह वह राष्ट्र नही है जो बुरा है, बल्कि यह संकीर्णता, स्वार्थ, विशिष्टता है जो आधुनिक राष्ट्रों के लिए अभिशाप है, जो कि बुरा है।[13]

टैगोर ने आधुनिकता के निहितार्थ में आधुनिक पश्चिम की आलोचना की। जबकि गांधी ने आधुनिकता का विरोध किया और उनके द्वारा परम्पराओं के प्रतिज्ञा से उत्तर–आधुनिक चेतना का उदय हुआ। गांधी और टेगोर में राष्ट्रवाद का भय उनके साम्राज्यवाद विरोधी अनुभवों से पनपा और भारतीयता की अवधारणा को उनके द्वारा अपनी विश्व की समझ से जोड़ने को प्रयास रहा। टैगोर अपनी बौद्धिक और भावनात्मक यात्रा में युवा अवस्था में हिन्दू राष्ट्रवादी और वयस्कता में ब्रह्माणवादी उदार मानवता में अधिक कट्टरपंथी, राज्य विरोधी थे, गाँधी भी अपने अन्तिम वर्षों में अपनी गांधीवादी सामाजिक आलोचना में उनके जैसे ही दिखे।[14]

गांधी आधुनिक भारत के लिये बाहरी थे, टैगोर अन्दरूनी थे, टैगोर ने भारत में आधुनिक चेतना को आकार देने में भाग लिया उनकी आवाज गिनी गयी। यह वांछित लोगों को आशा दिलाने के लिये है कि टैगोर व गाँधी को लोगों ने काफी करीब से महसूस किया। लेकिन वे अपनी दुनियाँ में अपने–अपने तरीके (पद्धति) में अलग है, वे ग्रामीण पुर्ननिर्माण का कार्य करते है वे दोनो आजादी के रास्ते में गाँवों की आत्मनिर्भरता और हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच एकता लाना चाहते हैं। दोनों ने भारतीय समाज में किसान वर्ग को एक बहुत बड़े वर्ग के रूप में समझा जिन मुद्दों पर गाँधी व टैगोर में मतभेद था, उन पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस हुई है।

अतः यहाँ स्वतंत्रता व राष्ट्रवाद में दोनों की सामान्य स्थिति को जानना आवश्यक होगा। मनुष्य के धर्म में टैगोर ने इस स्थिति को विकसित किया कि स्वतंत्रता के विकास का इतिहास मानव संबंधों की पूर्णता का इतिहास है।[15] गाँधी ने भारत में नस्लीय संघर्ष को समाप्त करने के लिये इसी सिद्धान्त को लागू किया। टैगोर ने यह धारण विकसित किया कि राष्ट्र राज्य का आधार 'सार्वभौमिक सदभाव' और मानव संबंधों कि पूर्णता के आदर्शों के लिये खतरा है।[16] यही आधार था जिस पर उन्होंने राष्ट्रवाद कि आलोचना की। टैगोर इस बात को लेकर परेशान थे कि उग्र राष्ट्रवाद का प्रभाव जो पश्चिम की देन है और भारत इसको अपना रहा है काफी खतरनाक है। बंगाल में बिपिनचन्द्र पाल व चितरंजनदास जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने राष्ट्रवादी कल्पनाओं को भारत में भविष्य के लिये देवतत्व से जोड़ा। महात्मा गाँधी सहित पूरे देश के राष्ट्रवादी नेतृत्व के लिये राजनीतिक स्वशासन या स्वराज को अध्यात्मिक आत्मशासन या स्वराज के एक आवश्यक चरण के रूप में समझा जा सकता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अकेले इस प्रवृत्ति के खिलाफ बोला। उन्होंने तर्क दिया कि भारत के भविष्य में महत्त्वपूर्ण रूकावट वाला ब्लाक सामाजिक समस्याओं में है। जैसे कि– मानव के लिये मानव अधिकारों की अनुपस्थिति और शिक्षा वर्गों के आम जनता के बीच अलगाव। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि देश को सबसे ज्यादा जरूरी वह उसके भीतर से ही आने वाला रचनात्मक कार्य है। और एक नैतिक समाज का निर्माण नैतिक जागरूकता का सबसे अच्छा तरीका है।[17]

1905 में 'स्वदेशी समाज' नामक पेपर में उन्होंने इस बात की चर्चा की, कि हमें अपने देश को किसी विदेशी से नहीं जीतना है, बल्कि हमारी अपनी जड़ता से, हमारी अपनी उदासीनता से जीतना है।[18]

टैगोर को इसमें कोई संदेह नहीं था कि यदि समाजिक परिवर्तन के बहिष्कार के लिये राजनीतिक स्वतंत्रता का लक्ष्य रखा गया था तो भारत की सामाजिक समस्याएँ एक सम्प्रभू राज्य बनने के बाद भी उसे परेशान करना जारी रखेगी। गाँधी नैतिक लक्ष्य के बारे में पूरी तरह सहमत थे लेकिन रवीन्द्रनाथ द्वारा राष्ट्रवाद की सभी आलोचनाओं को स्वीकार नहीं कर सके।[19]

गाँधी ने दृढ़ता से यह स्वीकार किया कि भारतीय राष्ट्रवाद अनन्य नहीं, न ही विनाशकारी और न ही आक्रमक है। इसके विपरीत उन्होंने लिखा यह स्वास्थ्य देन और धार्मिक है, और इसलिए मानवीय है। इस पर वे अलग–अलग हुए और अपने–अपने अलग रास्ते पर चलने को सहमत हुए। जहाँ गाँधी ने अपने नैतिक मूल्यों के परिक्षण के आधार के रूप में राजनीति को चुना वहीं टैगोर राजनीति से अलग रहे और शिक्षित अभिजात वर्ग व जनता को शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन में एक वैकल्पिक शिक्षा द्वारा करीब लाने का प्रयास करते रहे। लेकिन टैगोर को गाँधी के नेतृत्व में बहुत आशा थी। 1919 ई. का रालेट एक्ट सत्याग्रह सरकार के खिलाफ अभूतपूर्व सार्वजनिक प्रदर्शन में बदल गया। फिर गांधी को वापस जाने का कोई रास्ता नहीं बचा। वह जन आन्दोलन के निर्विवाद नेता थे, जिसमें स्कूल और कॉलेजों के बहिष्कार का असहयोग कार्यक्रम, चरखे का राष्ट्रवादी रूप कताई आन्दोलन के रूप में शुरू करना और विदेशी कपड़ों को जलाना शामिल था।

लेकिन टैगोर ने ऐसी गतिविधियों के खिलाफ असहजता का भाव अपनाया। 1924 ई. में कांग्रेस ने गाँधीजी की सिफारिसों के तहत जिसमें इसके सदस्यों को कुछ निश्चित मात्रा में चरखें पर कपड़ा कातना था एक मासिक अंशदान के रूप में इस विचार ने आन्दोलन को राष्ट्र स्तर पर लोकप्रियता प्रदान की और कतायी को जनता व राजनेताओं के बीच संबंध बनाने का एक साधन माना गया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वराज के लिए एक राजनीतिक रणनीति के रूप में चरखे के उपयोग के विचार का पूरी तरह से विरोध किया और "द कल्ट ऑफ द चक्र (1925)" लिखकर अपनी स्थिति को उजागर किया। और तर्क दिया कि प्रयोजन का कोई सरल (शार्ट कट) मार्ग नहीं है, कड़ी मेहनत ही सफल हो सकती है। जनता को एक विचार में रूपांतरण से कुछ भी संभव नहीं है, हमारी गरीबी एक जटिल समस्या है, इसे कताई व बुनाई जैसे किसी एक विशेष विचार द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता। उन्होंने पूछा कि क्या गरीबी पर्याप्त धागे की कमी या यह हमारी जीवनशक्ति की कमी 'हमारी एकता' की कमी के कारण थी। उन्होंने कपड़ों के जलाने पर भी आपत्ति जतायी और कहा कि इस प्रकार की विधि से गरीबों को चोट लगी और उन्हें अपने गरीमा व अस्तित्व के लिये जो उन्होंने हासिल किया उसको अनुदान करने के लिये मजबूत किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मानचेस्टर से कपड़ा खरीदना या बेचने को अर्थशास्त्र के क्षेत्र में रखना चाहिए।

गाँधी इससे सहमत थे कि देश को स्वराज के लिए अधीन नहीं होना चाहिए लेकिन टैगोर के कपड़े जलाने के विरूद्ध से सहमत नहीं थे, उन्होंने घोषणा की मेरे विदेशी कपड़े जलाते हुए मैं अपनी शर्म को जलाता हूँ और कहा कि कोई भी अर्थशास्त्र जो किसी व्यक्ति या किसी देश कि भलायी को अस्वीकार करता हो वह अनैतिक और पापी है।[20]

गाँधी यह दावा करते हैं कि देश में हर एक व्यक्ति द्वारा कतायी करना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह सभी के लिये आर्थिक स्वतंत्रता लाता है। हर ग्रामीण की बुनियादी जरूरतों को पूरा करता है, सभी को रोजगार प्राप्त करना है और इससे शोषण खत्म हो जाएगा।

1921 ई. में अपने निबंध 'सत्येर अबाहा (द काल ऑफ ट्रुथ)' में गाँधी जी के प्यार पर अपना अविश्वास व्यक्त किया। भारत उसके दिल पर कब्जा कर लिया था गाँधी के रोलेट सत्याग्रह के खिलाफ संगठित आन्दोलन, हड़ताल आदि को रवीन्द्रनाथ राष्ट्रवाद की सबसे बुरी अभिव्यक्ति मानते हैं।

गाँधी ने टैगोर को आश्वासन दिया कि असहयोग, अहिंसा और स्वदेशी आन्दोलन ऐसे संदेश थे जिससे दुनिया तक पहुँचा जा सकता था न कि ये विशिष्ट सिद्धान्त थे। वह कहते हैं कि यह रवीन्द्रनाथ टैगोर के वैश्विक शान्ति के संदेश से अलग नहीं थे। लेकिन टैगोर पश्चिमी सोच और पश्चिमी विज्ञान के गाँधी की अस्वीकृति पर स्वयं को सम्मिलित नहीं कर सके। 1921 ई. के व्याख्यान में 'शिक्षण मिलन (संस्कृतियों का संघ)' उन्होंने पश्चिम और पूर्व के बीच कट्टरपंथी मतभेदों को तोड़ने के लिये एक अपील की। उन्होंने लिखा कि सेक्यूलर ज्ञान यूरोपीय विचारकों और वैज्ञानिकों के कब्जे में था और हम पूर्व में जिनको इसकी आवश्यकता है उन्हें इनकी मदद चाहिए। अगर हम पश्चिमी विज्ञान से इसलिए पक्षपातपूर्ण है क्योंकि यह पश्चिमी है इससे न केवल अपने सिद्धान्तों से वंचित होंगे जो सिखाए जाते हैं, बल्कि हमारी पूर्वी अध्यात्मिकता को नीचे खींचेंगे। टैगोर ने स्कूल व कॉलेजों के बहिष्कार की गांधीवादी विधि के खिलाफ बात की। उन्होंने कहा कि अभिमानी राष्ट्रवाद (अरोगेंट नैशनलिज्म) की भावना में शिक्षा का बहिष्कार करने की बजाए भारत को शैक्षणिक केन्द्र विकसित करने की तलाश करनी चाहिए, जहाँ आध्यामिक और वैज्ञानिक ज्ञान की एकता पैदा की जाएगी।

सन्दर्भ सुची

1. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, नैशनलिज्म, हिन्दी अनुवाद– समित्र मोहन, राष्ट्रीय पुस्तक निवास, दिल्ली, 2016, पृ. 48.
2. वही, परिचय, पृ. 15.
3. भट्टाचार्य, सब्यसाची, महात्मा एंड पोएट, नैशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, न्यू दिल्ली, 1997.
4. वही.
5. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, नैशनलिज्म, हिन्दी अनुवाद– समित्र मोहन, राष्ट्रीय पुस्तक निवास, दिल्ली, 2016, पृ. 49.
6. वही, पृ. 49.
7. तेंगशे, एल.एच., टैगोर एंड हिज व्यू ऑफ आर्ट, हास्सेल स्ट्रीट प्रेस, 2021, पृ. 9.
8. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, नैशनलिज्म, हिन्दी अनुवाद– समित्र मोहन, राष्ट्रीय पुस्तक निवास, दिल्ली, 2016.
9. वही, पृ. 55.
10. वही, पृ. 55.
11. नंदी, आशीष, द इलिजिटीवेसी ऑफ नैशनलिज्म, सी.एच. रवीन्द्रनाथ टैगोर एंड द पॉलिटिक्स ऑफ सेल्फ, (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), नई दिल्ली, 1994.
12. देसाई, एम.एच., गांधी एंड इंडियन विलेजेज, मोहित पब्लिकेशन्स, (मद्रासः एस. गणेशन, 1927), पृ. 170.
13. गांधी, एम.के., यंग इंडिया, पत्रिका, 18 जून 1925.
14. गुप्ता, उमा दास, रवीन्द्रनाथ टैगोर : ए बायोग्राफी, (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), नई दिल्ली, 2013.
15. वही.
16. वही, पृ. 103.
17. वही.
18. वही.
19. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, द काल ऑफ ट्रुथ इन महात्मा एंड द पोएट, पृ. 103.
20. भट्टाचार्य, सब्यसाची, महात्मा एंड पोएट, नैशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, न्यू दिल्ली, 1997, पृ. 90.